।। श्रीहरिः ।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

तव पूजा जगन्मातर्, लोकशिक्षाकरी शुभे।
ब्रह्मस्वरूपा भवती, कृष्णवक्षः(स्) स्थलस्थिता।।1।।

अर्थः श्रीगणेश ने कहा कृ जगन्मातः! तुम्हारी यह पूजा लोगों को शिक्षा देने के लिये है। शुभे! तुम तो स्वयं ब्रह्मस्वरूपा और श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर वास करनेवाली हो ।।1।।

यत्पादपद्ममतुलं(न्), ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम्।
सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या, मुनीन्द्राः(स्) सनकादयः।।2।।

जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च, सिद्धेन्द्राः(ख्) कपिलादयः।
तस्य प्राणाधिदेवि त्वं(म्), प्रिया प्राणाधिका परा।।3।।

अर्थः ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवगण, सनकादि मुनिवर, जीवन्मुक्त भक्त और कपिल आदि सिद्धशिरोमणि, जिनके अनुपम एवं परम दुर्लभ चरणकमल का निरन्तर ध्यान करते हैं, उन श्रीकृष्ण के प्राणों की तुम अधिदेवी तथा उनके लिये प्राणों से भी बढ़कर परम प्रियतमा हो।।2,3।।

वामाङ्गनिर्मिता राधा, दक्षिणाङ्गश्च माधवः।
महालक्ष्मीर्जगन्माता, तव वामाङ्गनिर्मिता।।4।।

अर्थः श्रीकृष्ण के दक्षिणाङ्ग माधव हैं और वामाङ्ग से राधा प्रादुर्भूत हुई हैं। जगज्जननी महालक्ष्मी तुम्हारे वामाङ्ग से प्रकट हुई हैं।।4।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

वसोः(स्) सर्वनिवासस्य, प्रसूस्त्वं(म्) परमेश्वरी।
वेदानां(ञ्) जगतामेव, मूलप्रकृतिरीश्वरी।।5।।

अर्थः तुम सबके निवासभूत वसु को जन्म देनेवाली, परमेश्वरी, वेदों और लोकों की ईश्वरी मूलप्रकृति हो ।।5।।

सर्वाः(फ्) प्राकृतिका मातः(स्), सृष्ट्यां(ञ्) च त्वद्विभूतयः।
विश्वानि कार्यरूपाणि, त्वं(ञ्) च कारणरूपिणी।।6।।

अर्थः मातः! इस सृष्टि में जितनी प्राकृतिक नारियाँ हैंय वे सभी तुम्हारी विभूतियाँ हैं। सारे विश्व कार्यरूप हैं और तुम उनकी कारणरूपा हो ।।6।।

प्रलये ब्रह्मणः(फ्) पाते, तन्निमेषो हरेरपि।
आदौ राधां(म्) समुच्चार्य, पश्चात् कृष्णं(म्) परात्परम्।।7।।

स एव पण्डितो योगी, गोलोकं(म्) याति लीलया।
व्यतिक्रमे महापापी, ब्रह्महत्यां(म्) लभेद् ध्रुवम्।।8।।

अर्थः प्रलयकाल में जब ब्रह्मा का तिरोभाव हो जाता है। वह श्रीहरि का एक निमेष कहलाता है। उस समय जो बुद्धिमान् योगी पहले राधा, फिर, परात्पर कृष्ण अर्थात् राधा-कृष्ण का सम्यक् उच्चारण करता है। वह अनायास ही गोलोक में चला जाता है। इससे व्यतिक्रम करने पर वह महापापी निश्चय ही ब्रह्महत्या के पाप का भागी होता है ।।7,8।।

।। श्रीहरिः ।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

जगतां(म्) भवती माता, परमात्मा पिता हरिः।
पितुरेव गुरुर्माता, पूज्या वन्द्या परत्परा।।9।।

अर्थः तुम लोकों की माता और परमात्मा श्रीहरि पिता हैंय परंतु माता पिता से भी बढ़कर श्रेष्ठ, पूज्य, वन्दनीय और परात्पर होती है।।9।।

भजते देवमन्यं(म्) वा, कृष्णं(म्) वा सर्वकारणम्।
पुण्यक्षेत्रे महामूढो, यदि निन्दति राधिकाम्।।10।।

वं(व्)शहानिर्भवेत्तस्य, दुःखशोकमिहैव च।
पच्यते निरते घोरे, यावच्चंद्रदिवाकरौ।।11।।

अर्थः इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में यदि कोई मन्दमति पुरुप सबके कारणस्वरूप श्रीकृष्ण अथवा किसी अन्य देवता का भजन करता है और राधिका की निन्दा करता है तो वह इस लोक में दुःख-शोक का भागी होता है और उसका वंशच्छेद हो जाता है तथा परलोक में सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति-पर्यन्त वह घोर नरक में पचता रहता है ।।10,11।।

गुरुश्च ज्ञानोद्गिरणाज्, ज्ञानं(म्) स्यान्मंत्रतंत्रयोः।
स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं(म्),
भक्तिः(स्) स्याद् युवयोर्यतः।।12।।

अर्थः ज्ञान का उद्गीरण करने अर्थात् बतलाने का स्तोत्र गुरु होता है। वह ज्ञान मन्त्र-तन्त्र से प्राप्त होता है। वह मन्त्र और वह तन्त्र आप दोनों की भक्ति है।।12।।

।। श्रीहरिः ।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

निशेव्य मन्त्रं(न्) देवानां(ञ्), जीवा जन्मनि जन्मनि।
भक्ता भवन्ति दुर्गायाः(फ्), पादपद्मे सुदुर्लभे।।13।।

अर्थः जब जीव प्रत्येक जन्म में देवों के मन्त्र का सेवन करता है, तो उसे दुर्गा के परम दुर्लभ चरणकमल में भक्ति प्राप्त हो जाती है।।13।।

निशेव्य मन्त्रं(म्) शम्भोश्च, जगतां(ङ्) कारणस्य च।
तदा प्राप्नोति युवयोः(फ्), पादपद्मं(म्) सुदुर्लभम्।।14।।

अर्थः जब वह लोकों के कारणस्वरूप शम्भु के मन्त्र का आश्रय ग्रहण करता है, तब आप दोनों (राधा-कृष्ण) के अत्यन्त दुर्लभ चरणकमल को प्राप्त कर लेता है।।14।।

युवयोः(फ्) पादपद्मं(ञ्) च, दुर्लभं(म्) प्राप्य पुण्यवान्।
क्षणार्धं(म्) षोडशां(व्)शं(ञ्) च, न हि मुञ्चति दैवतः।।15।।

अर्थः जिस पुण्यवान् पुरुष को आप दोनों के दुष्प्राप्य चरणकमल की प्राप्ति हो जाती है, वह दैववश क्षणार्ध अथवा उसके षोडशांश काल के लिये भी उसका त्याग नहीं करता ।।15।।

।। श्रीहरिः ।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

भक्त्या च युवयोर्मन्त्रं(ङ्), गृहीत्वा वैष्णवादपि।
स्तवं(म्) वा कवचं(म्) वापि, कर्ममूलनिकृन्तनम्।।16।।

यो जपेत् परया भक्त्या, पुण्यक्षेत्रे च भारते।
पुरुषाणां(म्) सहस्रं(ञ्) च, स्वात्मना सार्धमुद्धरेत्।।17।।

अर्थः जो मानव इस पुण्यक्षेत्र भारत में किसी वैष्णव से आप दोनों के मन्त्र, स्तोत्र अथवा कर्ममूल का उच्छेद करनेवाले कवच को ग्रहण करके परमभक्ति के साथ उसका जप करता है, वह अपने साथ-साथ अपनी सहस्रों पीढ़ियों का भी उद्धार कर देता है ।।16,17।।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्, स्त्रालंकारचन्दनैः।
कवचं(न्) धारयेद् यो हि, विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम्।।18।।

अर्थः जो मनुष्य विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार और चन्दन द्वारा गुरु को भलीभाँति पूजन करके आपके कवच को धारण करता है, वह निश्चय ही विष्णु-तुल्य हो जाता है।।18।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते गणेशकृतं(म्) श्रीराधास्तवनं(म्) सम्पूर्णम्
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड 123। 3-20)